International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(3): 88-90

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(3): 88-90
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 18-03-2016
Accepted: 19-04-2016

डॉ. रेनू सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, मिश्र बन्धु महाविद्यालय, बेलौही लालपुर, महाराजगंज, उ०प्र०

Correspondence
डॉ. रेनू सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, मिश्र बन्धु महाविद्यालय, बेलौही लालपुर, महाराजगंज, उ०प्र०

योगविज्ञान की सार्वभौमिकता

डॉ. रेनू सिंह

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतंजलिं प्रांजलिरानतोऽस्मि।।

महर्षि पतंजलि द्वारा प्रणित योगसूत्र में प्रतिपादित सिद्धान्त, देश, समाज, काल, तथा समय की सीमा से रहित होने से सार्वदेशिक, सार्वजातिक, सार्वकालिक तथा सार्वसामयिक होने से सर्वथा सर्वत्र सर्वोपयोगी है। अतः इन्हें महाव्रत संज्ञा से अभिहित किया है। चित्त की दो ही स्थितियाँ होती हैं निरुद्धावस्था तथा व्युत्थितावस्था। निरुद्धावस्था में चित्त आत्मोन्मुख होता है तथा व्युत्थि अवस्था में वह विषयोन्मुख होने से संसारोन्मुख हो जाता है। जिससे वह नाना प्रकार के अन्तराय एवं क्लेशों से आवृत हो जाता है। परिणामतः व्यक्ति में नानाविध मनोदैहिक विकृतियों का अविर्भाव हो जाता है। ऐसी स्थिति में चित्त को पुनः समत्व में लाने के लिए योग के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।

महर्षि पतंजलि ने योगान्तराय एवं क्लेशे नाम से अस्थायी एवं स्थायी रूप से दो प्रकार के समाधि विघ्नों का निरूपण किया है। व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्ति दर्शन अलब्ध भूमित्तव एवं अनवस्थित तत्त्व–इन नव अन्तरायों का योग विघ्न, योगमल, योगप्रतिपक्ष आदि नामों से अभिहित किया है। इनकी उग्र अवस्था में इनके साथ दुःख, दोरमनस्वरूप, अंगमेज्यत्व तथा श्वासप्रश्वास नामक चार विक्षेपसहभू (विक्षेपों के साथ उत्पन होने वाले) सह भूत उत्पन्न होते हैं जो व्यक्ति को वैयक्ति सामाजिक, शारीरिक तथा मानसिक रूप से पंगु बना देते हैं। महर्षि पतंजलि ने बहुत ही वैज्ञानिक पद्धति से इन दोषों के निराकरण हेतु यम (अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, तथा अपरिग्रह नियम, शोच संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधन) आसन तथा प्राणायाम के रूप में अष्टांग योग के प्रथम चार अंगों का विधान किया है अर्थात् अहिंसा आदि यमों के द्वारा आध्यात्मिक आधिवैदिक तथा आधि–भौतिक दुःखों का निराकरण, शैचादि नियमों द्वारा दौर्मन्सय का निराकरण आसनों के द्वारा अंगमेजयत्व का निराकरण तथा प्राणायाम के द्वारा श्वास प्रश्वासजनित दोषों का निराकरण करके व्यक्ति को सर्वांगीण स्वास्थ्य प्रदान करता है। इसी प्रकार से स्थाई रूप से चित्त में विद्यमान अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश नाम से प्रसिद्ध पंचक्लेशों का निराकरण क्रियायोग अर्थात् तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधन द्वारा (इन क्लेशों का) तनूकरण करके समाधि के लिए मार्ग प्रशस्त किया जाता है।

एक परम्परा के अनुसार योगशास्त्र, व्याकरणशास्त्र तथा चिकित्साशास्त्र – इन तीनों का प्रणेता एक ही व्यक्ति हैं– महर्षि पतंजलि। उपर्युक्त पद्य में 'चित्त मल निवारण हेतुक योगशास्त्र (योगसूत्र), वाणीमल–निवारण हेतुक व्याकरण पदशास्त्र (महाभाष्य) तथा शरीरमल–निवारणहेतुक चिकित्साशास्त्र (चरक संहिता) के प्रणेता पतंजलि को करबद्ध प्रणाम किया गया है।

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।
योगी स्थाणुत्वमाप्रोति ततो वायुं निरोध्येत्।।

प्राण एवं मन की स्थिरता से ही शरीर भी स्थिर एवं स्वस्थ रहता है। वात–पित्त–कफत्मक तीन धातुओं के अधीन हमारा यह शरीर पूर्णतया चित्त पर ही आश्रित है। अतः चित्त के अस्वस्थ (नष्ट) होने पर धातुओं में भी असन्तुलन (नाश) हो जाता है तथा चित्त के स्वस्थ रहने पर ही रस–रक्त–मांस–मेदा–मजादी सप्त धातुऐं भी अपने–अपने कार्यों का अच्छी प्रकार से सम्पादन करती हैं। अतः चित्त स्वस्थ रखने के लिए व्यक्ति को सदैव प्रयासरत रहना चाहिए। 'लालयेच्चित्त–बालकम्'।

चित्तायत्तं धतुवश्यं शरीरं नष्टे चित्ते धातवो यान्ति नाशम्।
तस्माच्चित्तं यत्नतो रक्षणीयं स्वस्थे चित्ते धतवः सम्भवन्ति।।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। (यो० सू 1।2) अर्थात् चित्त–वृत्तियों का निरोध ही योग है। अतएव योग के निरन्तर अभ्यास के द्वारा चित्त में जैसे जैसे स्थिरता आने लगती है वैसे–वैसे ही उसी अनुपात से प्राणवायु, वाणी, शरीर तथा दृष्टि में भी स्थिरता की झलक प्रतीत होने लगती है। जो परिपूर्ण तथा समग्र स्वास्थ्य की द्योतिका है।

यथा यथा दृढाभ्यासान्मनसः स्थिरता भवेत्।
वायु–वाक्काय–दृष्टिनां स्थिरता च तथा तथा।।

जीवन प्रकृति का सर्वोत्तम अमूल उपहार है। इसे योग द्वारा ही नीरोग एवं चिरस्थायी रखा जा सकता है। योग से शरीर में सुवर्ण के सदृश्या कान्ति, मन में शान्ति, बुद्धि में सूक्ष्म दर्शिता, समाज में सौहार्द, विश्व में बंधुता एवं भ्रातृभाव आदि गुण सहज रूप से ही उपलब्ध हो जाते हैं। दोनों का निकारण करते हुए सद्गुणों का आधान करना ही योग का मुख्य उद्देश्य है। व्यक्ति के समन्वित एवं समग्र विकास में योग का महत्वपूर्ण स्थान है। योग रोगी के रोग को दूर करता है तथा स्वास्थ्य की रक्षा करता है। योग चिकित्सात्मक तथा निरोधात्मक दोनों दृष्टियों से परम उपयोगी है। घेरण्ड संहिता में योग द्वारा सुसंस्कृत शरीर को पक्के हुए घड़े की समानता दी गयी है तथा योगरहित को कच्चे घड़े की। जैसे पके हुए घड़े से समस्त कार्य सम्भव है, उसी प्रकार योग द्वारा परिपक्व शरीर से ही सब प्रकार की क्षमता संभव है। अतः परिपक्व देह से ही मानव धर्मार्थकाममोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टयी को प्राप्त कर सकता है। योगाभ्यास करने वाले में धैर्य, क्षमा, शान्ति, सत्य, दया, संयम इत्यादि सद्गुण सदा सहज रूप से ही विद्यमान रहते हैं। अतः योगी को स्वयं से पूर्ण स्वस्थ समाज के लिए ही परमयोगी माना जा सकता है। घेरण्ड सेहिता में शोधन, दृढ़ता, स्थिरता, धीरता, लघुता प्रत्यक्ष एवं निलिपता आदि की प्राप्ति के लिए षट्कर्म, आसन मुद्रा प्राणायाम, प्रत्याहार ध्यान एवं समाधि आदि अभ्यासों की व्यवस्था की है। जो आदर्श एवं परिपूर्ण मानव के निर्माण में परम सहायक है। योग समस्त मलों का निराकरण करते हुए मनुष्य को कुन्दन के समान परम उज्ज्वल बना देता है। व्यक्ति में अनुपम निखार उत्पन्न हो जाता है। योग का उद्देश्य बहुत ही व्यापक है तथापित इसका क्रियात्मक पक्ष नितांत वैयक्तिक ही है। एक प्रकार का अभ्यास किसी व्यक्ति विशेष के लिए बहुत ही लाभकारी हो सकता है। परन्तु वही आयाम दूसरे व्यक्ति के लिए हानिकारक भी हो सकता है। अतः व्यक्ति की प्रकृति, उसकी आयु, शारीरिक क्षमता एवं अन्य परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ही विधिपूर्वक योगाभ्यास करना चाहिए। विनम्र उक्ति प्रेरक सिद्ध हो सकती है।

देखा देखी साधे जोग
छीजे काया बाडे रोग

वस्तुतः योग के माध्यम से शरीर एवं मन का प्रशिक्षण किया गया है अतः तनावमुक्त स्थिति में योगाभ्यास करना अधिक लाभकारी है। योगशास्त्रों में लिखे हुए यथाशक्ति अर्थात् शक्ति के अनुसार एवं शनैः शनैः अर्थात् धीरे–धीरे इत्यादि शब्द बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। उचित लाभ की प्राप्ति के लिए इन शब्दों के भाव को मन में रखकर ही श्रद्धापूर्वक अभ्यास करना चाहिए। क्योंकि योग आपके कल्याण के लिए अपने आप में ही अपने द्वारा ही किया जाने वाला क्रियात्मक प्रयास है।

''ढूंढता फिरता हूँ मैं इकबाल अपने आपको।
आप ही गोया मुसाफिर आप ही मंजिल है मैं''

योगपद युज् धातु से निष्पन्न होता है। पाणिनीय धातु पाठ के अनुसार युज् धातु का योग, संयमन तथा समाधि के अर्थ में प्रयोग हुआ है। जो योगाभ्यास के मार्ग में सातत्य को व्यक्त करता है। चित्तवृत्तियों को लक्ष्य से संयुक्त करना, संयुक्त हुई वृत्तियों को लक्ष्य में पूर्णतया संयमित करना तथा संयमित वृत्तियों का (ध्याता, ध्यान तथा ध्येय के त्रिक् के रूप में) एकाकार हो जाना ही योग का अन्तिम सोपान समाधि है। ये तीनों स्थितियाँ एक ही साधना की सूक्ष्म, सूक्ष्मतर एवं सूक्ष्मतम अवस्थाएं हैं। इसी प्रक्रिया को अष्टांग योग में धारणा तथा समाधि के रूप में प्रतिपादित किया गया है। व्याधिग्रस्त विक्षिप्त चित्त को समाधि के प्रति उन्मुख करने के लिए ही समस्त योगाभ्यास किए जाते हैं। यद्यपि आसनादि योगाभ्यास शरीर के द्वारा सम्पन्न होने के कारण आपाततः स्थूल प्रतीत होते हैं, तथापि इनका प्रभाव साक्षात् सूक्ष्म चित्त पर ही पड़ता है। इसीलिए इन्हें शरीर के माध्यम से चित्त का प्रशिक्षण कहा गया है। परिणामतः जैसे–जैसे अभ्यासों से चित्त में स्थिरता आती है वैसे ही साधक के प्राण, वाणी, शरीर तथा दृष्टि में भी स्थिरता व्यक्त होने लगती है।

उपर्युक्त लक्षण दृष्टिगोचर होने से साधकों को समझना चाहिए कि हम वास्तव में योग का अभ्यास कर रहे हैं। अन्यथा शरीर का व्यायाम मात्रा ही होगा, जो अन्ततः स्नायु तथा नाड़ीमण्डल में तनाव ही उत्पन्न करेगा।

इसी प्रक्रिया के द्वारा योग के अन्तिम लक्ष्य समाधि को प्राप्त करने के लिए प्रसिद्ध सर्वमान्य है। इनमें स्वास्थ्य, रक्षा और सौष्ठव के लिए आसन नितांत उपादेय है। इनके सतत अभ्यास से शरीर में स्वास्थ्य, सौष्ठव, नीरोगता, स्थिरता एवं दृढ़ता आती है। इन आसनों द्वारा शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव की दृष्टि से मुख्यता निम्नलिखित तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है –

1– शरीरसंवर्द्धनात्मक आसन
2– विश्रामात्मक आसन
3– ध्यानधारणात्मक आसन

1 शरीरसंवर्द्धनात्मक आसन – ये आसन शरीर संर्वधन द्वारा शरीर की रक्षा एवं सौष्ठव प्रदान करते हुए मानव व्यक्तित्व का विकास करते हैं। इसके अर्न्तगत कुछ आसन मेरुदण्ड के अन्तःस्रावी ग्रन्थि समूह का आभ्यान्तिरिक अनैच्छिकस्नायु संस्थान के द्वारा मानव के आन्तरिक स्वास्थ्य एवं सौष्ठव का संर्वधन करते हैं। इनमें पश्चिमतान, मत्स्येन्द्र, धनुः, शीर्ष, सर्वांग तथा हलासनादि मुख्य हैं। कुछ आसन अस्थि–स्नायु संस्थान के द्वारा शरीर का संर्वधन कार्य करते हैं। जैसे – कुक्कुटासन, कूर्मासन, उत्काटसन आदि। कुछ आसन संतुलन चेतना के द्वारा संर्वधन कार्य सम्पन्न करते हैं। जैसे– मयूरासन, वक्रासन, वृक्षासन आदि।

2 विश्रामात्मक आसन – विश्रामात्मक आसन शरीर के शिथिलीकरण पद्धति के द्वारा न केवल शरीर के ही श्रम का हरण करते हैं प्रत्युत चित्त को भी विश्रान्ति प्रदान करते हैं। इनमें शवासन, मकरासन एवं योगनिन्द्रासनादि मुख्य हैं।

3 ध्यान धरणात्मक आसन – इन आसनों के लिए शरीर संतुलन हेतु विस्तृत आधार की आवश्यकता रहती है तदर्थ त्रिकोणात्मक एवं कदाचित् चतुष्कोणात्मक आधार का आश्रय लिया जाता है। जिससे शरीर चेतना के अभाव में भी शरीर संतुलन में रहे वह स्थिति ध्यान धाराणात्मक आसनों के लिए उपयोगी है। उक्तस्थिति सिद्धासन, पद्मासन, स्वस्तिकासनः, भद्रासन एवं वज्रासनादि में देखी जा सकती है।

आज मानव समाज में अधिकांश व्यक्ति अस्वस्थ है। नगर एवं ग्राम के चिकित्सालयों में रोगियों की खचाखच भीड़ है। त्राहि–त्राहि करते हुए जनसमुदाय स्वास्थ्य के समुचित उपाय की जिज्ञासा में भटक रहा है। उनके लिए योग ही एकमात्र आशा प्रदीप है। आज का शिक्षित वर्ग भी प्रायः तनाव, दबाव एवं कुण्ठाओं से ग्रस्त, असंतुलित जीवन व्यतीत कर रहा है। योग उनके लिए भी संतुलन का सेतु बन सकता है क्योंकि प्रत्येक अवस्था में समत्व लाना ही योग का परम उद्देश्य है। 'समत्वं योग उच्यते' समत्व ही स्वास्थ्य

है, वही योग है। अतः हम योग के द्वारा ही आजीवन सहज स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते है।

अन्त में मैं विश्वासपूर्वक कह सकती हूँ कि योग स्थूल शरीर से लेकर इन्द्रिय–अन्तःकरण–बुद्धिपर्यन्त समस्त व्यक्तित्व का परिष्कर हो जाता है। मानव समस्त दोषों से मुक्त होकर चिरस्थायी परिपूर्ण एवं सहज स्वास्थ्य को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। योगाभ्यासी में धैर्य, क्षमा, शान्ति, सत्य, संतोष, दया, करुणा, सहज मनःसंयम, त्याग, निर्भयता, ज्ञान पीपासा आदि सद्गुण सहज रूप से ही विद्यमान रहते हैं। तथा हि–

धैर्य यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिणी
सत्यं सूनुरयं दया च भगिनी भ्राता मनः संयमः।
शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजन–
मेते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे! कस्माद्भयं योगिनः।।

संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. योग सूत्र ३.२.३
2. यो. शा. ६६
3. हठयो. प्र. १.५६–५७
4. हठयो. प्र. १.३५
5. ह. योग प्र. २.७७